E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 3, Issue- 5 | May 2026

निर्वचन की प्रकिया और यास्क

डॉ. सुहासिनी
अध्येत्री – भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला

सारांश

यास्क का निर्वचन विषयक ग्रन्थ भारतीय शास्त्रीय परम्परा में ऋग्वैदिक काल से विद्यमान निर्वचन की शैली के बीज का पूर्ण पल्लवन है। प्रस्तुत शोधपत्र में यास्क के पूर्ववर्ती निर्वचन की परम्परा के कालक्रमिक इतिहास पर परिचर्चा पूर्वक यास्क के 'निरुक्त' में उसके पूर्ण विकास को प्रदर्शित करते हुये आचार्य यास्क के निर्वचन विषयक सिद्धान्तों पर उदाहारण पूर्वक विस्तृत चर्चा की गयी हैं। 'निर्वचन' शब्द का शब्दशास्त्र के पारिभाषिक अर्थ में सर्वप्रथम देवताध्याय ब्राह्मण में उल्लेख है। इससे पूर्व *अथर्ववेद* (९.८.१०) में निरवोचम् तथा *याजुष काठक* (६.५), *मैत्रायणी संहिता* (१.११.९), *शाङ्खायन* (८.३) आदि प्राचीन ब्राह्मणों में 'निरुक्त' शब्द का प्रयोग अपने यौगिक अर्थ में हुआ है उपनिष। वैदिक वाङ्मय मे निर्वचन शब्द का प्रयोग शब्द के विश्लेषण करने वाले शास्त्र के अर्थ में भले न हुआ हो किन्तु ऋग्वेद के मन्त्रों में ही हमें अनेकानेक शब्दों का निर्वचन तथा व्युत्पत्तिपरक विश्लेषण प्राप्त होने लगता है। *ऋग्वेद* के बाद *अथर्ववेद* संहिता में निर्वचन की शैली में कुछ विकास हुआ है। *अथर्ववेद* में क्रिया को नाम के हेतु के रूप में स्पष्ट रूप से कहा गया है, जबकि *ऋग्वेद* में शब्द के साथ धातु रख देने मात्र से निर्वचन मान लिया जाता है। निर्वचन की तकनीक ब्राह्मण ग्रन्थों में पूर्णविकसित हो चुकी थी। ब्राह्मण ग्रन्थों के दश लक्षणों में से एक निर्वचन भी है। उपनिषद् तथा पुराण ग्रन्थ यत्र तत्र व्याख्यान में निर्वचन का आश्रय लेते हैं। इसी निर्वचन की शैली का पूर्ण विकास यास्क के निरुक्त में दिखता है। यास्क द्वारा प्रदर्शित इस निर्वचन शैली का भारतीय वाङ्मय में विधेय शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों के व्याख्यान के लिये एक तकनीक के रूप में प्रयोग प्रत्येक शास्त्र में हुआ है।

कुञ्जी शब्द: निरुक्त, निर्वचन, व्युत्पत्ति, अतिपरोक्षवृत्ति

प्रस्तावना

भाषा के विकास की प्रक्रिया का एक अभिलक्षण है – दुरूहता से सरलता की ओर उन्मुख होना। भाषिक विकास की इस सहज प्रक्रिया में तद्भाषा भाषी जनों को जटिल प्रतीत होने वाले अनेक शब्दों के अर्थ तथा ध्वन्यात्मक स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है अथवा वे प्रयोगबाह्य होने लगते हैं। लोकप्रयोग में न होने के कारण ऐसे शब्द आगामी पीढ़ी के लिए दुर्बोध हो जाते हैं। इस स्थिति में दुर्बोध शब्दों के अर्थावबोध तथा उनके मूल स्वरूप से भाषिक समुदाय को परिचित कराकर बहुमूल्य शब्दसम्पत्ति को कालकवलित होने से बचाने हेतु शास्त्र का प्रवर्तन होता है।

भारतीय मनीषा इस सम्बन्ध में सतत् जागरूक रही है। वह अपनी वाक् या भाषा को अघ्न्या मानकर उसके अपार शब्दभण्डार के एक एक शब्द की रक्षा के लिए प्रारम्भ से ही प्रयत्नशील रही है। यही कारण है भारतीय भाषा के आदिम लिखित साहित्य ऋग्वेद में ही हमें भाषा-विश्लेषण की प्रवृत्ति दृष्टिगत होने लगती है। भाषाविश्लेषण की पद्धति के दो आयाम हैं– प्रथम, शब्द की संरचना का विश्लेषण और दूसरा शब्द के अर्थ की मीमांसा। वस्तुतः दोनो

*Corresponding Author Email: suhasini.pandey8@gmail.com
Published: 08 May 2026
DOI: https://doi.org/10.70558/SPIJSH.2026.v3.i5.45725
Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0).

निरपेक्ष न होकर परस्पर उपकारक है। इन दो पद्धतियों को क्रमशः व्याकरण तथा निर्वचन (या निरुक्त) कहा जाता है।

निर्वचन का अर्थ

निर्वचन शब्द में छुपे हुए अर्थ को उद्घाटित करने की पद्धति है तथा इस पद्धति से शब्द के अर्थ का व्याख्यान करने वाला शास्त्र 'निरुक्त' कहलाता है।[1] वेद के छः अङ्गों में निरुक्त अन्यतम है जिसका प्रयोजन वेदार्थ का बोध कराना है। यास्क ने कहा है – *अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते।*[2] अर्थात् इस निरुक्त शास्त्र के बिना मन्त्रों के अर्थ का ज्ञान नहीं होता। किसी शब्द के निर्वचन की प्रक्रिया में प्रकरण प्राप्त शब्द के अर्थ का सन्दर्भ की दृष्टि से निश्चय करके तदर्थवाचक प्रकृति प्रत्यय आदि की कल्पना की जाती है। दुर्गसिंह ने निर्वचन शब्द का अर्थ करते हुए कहा है – परोक्षवृत्ति या अतिपरोक्षवृत्ति शब्द में छुपे हुए अर्थ को निकालकर अर्थात् उसके अवयवों को अलग अलग करके कहना निर्वचन कहलाता है – *अपिहितस्य अर्थस्य परोक्षवृत्तौ अपरोक्षवृत्तौ वा निकृष्य विगृह्य वचनं निर्वचनम्।*[3]

'निर्वचन' शब्द का शब्दशास्त्र के पारिभाषिक अर्थ में सर्वप्रथम देवताध्याय ब्राह्मण में उल्लेख है। इससे पूर्व *अथर्ववेद* (९.८.१०) में निरवोचम् तथा *याजुष काठक* (६.५), *मैत्रायणी संहिता* (१.११.९), *शाङ्खायन* (८.३) आदि प्राचीन ब्राह्मणों में 'निरुक्त' शब्द का प्रयोग अपने यौगिक अर्थ में हुआ है।[4] जिस देवता या उससे सम्बद्ध वस्तु का स्वरूप स्पष्ट व्याख्यात है, उसको ब्राह्मणों में निरुक्त कहा गया है। अतः ब्राह्मणों में देवविद्या के संदर्भ में निरुक्त शब्द का प्रयोग हुआ है।[5] वस्तुतः कर्मकाण्ड प्रधान ब्राह्मणों मे प्राप्त निर्वचनों का उद्देश्य देवताओं के स्वरूप को स्पष्ट करना ही था तथा कालान्तर में प्रवृत्त निरुक्त शास्त्र का भी प्रमुख प्रयोजन वैदिक देवता तत्त्व का ज्ञान कराना ही था – *अथापि याज्ञे दैवतेन बहवो प्रदेशा भवन्ति। तदेतेनोपेक्षितव्यम्*[6]

निर्वचन का ऐतिहासिक विकास

वैदिक वाङ्मय मे निर्वचन शब्द का प्रयोग शब्द के विश्लेषण करने वाले शास्त्र के अर्थ में भले न हुआ हो किन्तु ऋग्वेद के मन्त्रों में ही हमें अनेकानेक शब्दों का निर्वचन तथा व्युत्पत्तिपरक विश्लेषण प्राप्त होने लगता है। ऋग्वेद के निर्वचनों में निर्वचन के सिद्धान्तों के बीज लक्षित होते है तथा ऋग्वैदिक ऋषियों की ध्वनिपरिवर्तन आदि के सिद्धान्तों से अभिज्ञता भी। यहाँ कालक्रमिक रूप से निर्वचन की प्रक्रिया के इतिहास पूर्वक यास्क की निर्वचन प्रक्रिया पर विमर्श प्रस्तावित है।

नैरुक्तों का प्रथम तथा प्रधान सिद्धान्त है कि प्रत्येक नामपद आख्यातज है – *नामानि आख्यातजानि*[7] अर्थात् किसी द्रव्य के नाम का आधार उस द्रव्य में स्थित कोई विशेष क्रिया है अतः तत्क्रिया वाचक धातु से उस नाम का निर्वचन करना चाहिए। वैदिक साहित्य में उपलब्ध ८३३ निर्वचनों में से अधिकांश में साक्षात् या परोक्ष रूप से क्रिया को ही कारण माना है।[8]

---

[1] शास्त्री, निरुक्त के पाँच अध्याय, पृ. १

[2] निरुक्त. १.५

[3] निरुक्त २.१ पर दुर्ग

[4] शास्त्री, निरुक्त के पाँच अध्याय, पृ.३

[5] शास्त्री, निरुक्त मीमांसा, पृ. ९

[6] निरुक्त १.५

[7] निरुक्त. १.४

[8] शास्त्री, निरुक्त मीमांसा, पृ. १४८

जैसा कि ऊपर उल्लेख है निर्वचन परोक्ष तथा अतिपरोक्षवृत्ति शब्दों का विग्रहपूर्वक अन्वाख्यान करना है। ऋग्वेद में प्रत्यक्षवृत्ति शब्दों के साथ परोक्षवृत्ति शब्दों के भी निर्वचन किये गये हैं। यथा – *गायन्ति त्वा गायत्रिणः*[9] यहाँ गायत्र का निर्वचन गायन्ति करके √गै धातु का निर्देश करना प्रत्यक्षवृत्ति (जिसमें प्रकृति स्पष्ट हो) का उदाहरण है। ऋग्वेद में परोक्षवृत्ति (जिनमें क्रिया की वाचक धातु स्पष्ट न दिखायी दे) का एक सुन्दर उदाहरण अर्क की √अर्च् धातु से निरुक्ति है जो *अर्चन्त्यर्कमर्किणः* (कारक भेद से इसके स्तुत्य देवता तथा स्तुति = मन्त्र दो अर्थ है) [10] *अर्चन्तो अर्कम्*[11], *अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये*[12] आदि मन्त्रांशों में दिखायी देती है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि ऋषि को कवर्ग ध्वनियों के चवर्ग में परिवर्तन का सिद्धान्त सुविदित है। ध्यातव्य है कि कण्ठतालव्य से चवर्ग के विकास का निर्देश आधुनिक भाषावैज्ञानिकों ने किया है जिसका *जरितुर्वर्धया गिरः*[13] इस निर्वचन में संकेत ऋषियों ने किया है।

यास्क ने वृत्र[14] की √वृञ्, √वृध्, √वृत् से जो निरुक्ति दी है उसका मूल *ऋग्वेद* के ३.३६.८, १.८५.९, ३.३०.८ मन्त्रों में वृत्र के निर्वचन में प्रयुक्त अवृणीत, अवर्तयत् तथा वर्धमान इन पदों में खोजा जा सकता है।[15] *ऋग्वेद* के निर्वचनों से हमें किसी धातु के उन अर्थों का भी बोध होता है जो बाद में अप्रचलित हो गया। जैसे उस्त्र, वसु, विवस्वत् आदि शब्दों का वस् से निर्वचन इसका संकेत करता है कि कभी वस् धातु चमकना अर्थ में भी प्रचलित रही होगी।[16]

ऋग्वेद में प्राप्त निर्वचनों के अध्ययन से यह प्रमाणित होता है कि *ऋग्वेद* में निर्वचन में अर्थ को प्रधान माना जाता था तथा वर्णलोप, आगाम, विपर्यय, सम्प्रसारण, चुत्व आदि ध्वनिपरिवर्तनों को ऋषि जानते थे।

ऋग्वेद के बाद *अथर्ववेद* संहिता में निर्वचन की शैली में कुछ विकास हुआ है। *अथर्ववेद* में क्रिया को नाम के हेतु के रूप में स्पष्ट रूप से कहा गया है, जबकि *ऋग्वेद* में शब्द के साथ धातु रख देने मात्र से निर्वचन मान लिया जाता है।[17] यहाँ आज्य शब्द के दोनों संहिताओं में निर्वचन से यह अन्तर समझा जा सकता है– *अथर्ववेद* – *यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत्*[18] तथा *ऋग्वेद* – *समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः*।[19]

निर्वचन की तकनीक ब्राह्मण ग्रन्थों में पूर्णविकसित हो चुकी थी। ब्राह्मण ग्रन्थ के निर्वचन शैली के चार प्रमुख अभिलक्षण है[20] जो संहिताओं में नहीं है और बाद में निरुक्त में ये ही प्रमुख हैं–

१. निर्वचन से पूर्व हेतुवाचक कस्मात् शब्द का प्रयोग कहीं कहीं मिलता है। यथा – *कस्मात् होतेत्याचक्षत* [21]

[9] ऋग्वेद १.१०.१
[10] ऋग्वेद १.१०.१
[11] ऋग्वेद १.८५.२
[12] ऋग्वेद १.१६६.७
[13] ऋग्वेद, ९.४०.५
[14] निरुक्त २.५
[15] सांहितेय निरुक्ति कोश, पृ. ५
[16] शास्त्री, वैदिक वाङ्मय में भाषा चिन्तन, पृ. ४३
[17] शास्त्री, वैदिक वाङ्मय में भाषा चिन्तन, पृ.१२४
[18] अथर्वेद ९.६.११
[19] ऋग्वेद १०.८८.४
[20] शास्त्री, वैदिक वाङ्मय में भाषा चिन्तन, पृ.१५० तथा निरुक्त मीमांसा, पृ.३१–३२
[21] ऐतरेय ब्राह्मण १.२

२. नाम पड़ने के कारण भूत कथा का वर्णन करने के साथ निर्वचनीय पद को हेतुवाचक पद के साथ देना। यथा शतपथ ब्राह्मण में राक्षस शब्द का निर्वचन – *देवान् ह वै यज्ञेन यजमानांस्तान् असुररक्षसानि ररक्षुर्न यक्ष्ध्व इति, तद् यदरक्षंस्तस्माद्रक्षांसि* [22]

३. अतिपरोक्षवृत्ति शब्दों के निर्वचन का प्रथम प्रयास ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में मादुष से मानुष का निर्वचन इसका उदाहरण है।[23]

४. पदविशेष के निर्वचन के साथ उसके पर्यायों का निर्वचन भी किया जाने लगा था। जैसे ऐतरेय ब्राह्मण[24] में महानाम्नी शब्द का निर्वचन करने के बाद उसके पर्याय सिमा का निर्वचन किया गया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्वचन प्रायः यज्ञादि कर्मकाण्ड की दृष्टि से किये गये हैं अतः भाषाशास्त्रीय दृष्टि से बहुत सटीक न होने पर भी यज्ञ के विविध कर्मकाण्डों को समझने के लिये ये निर्वचन महत्त्वपूर्ण हैं और यही उनका प्रतिपाद्य है। यास्क ने बहुधा ब्राह्मणों के निर्वचनों को 'इति विज्ञायते' कहकर उद्धृत किया है। भगवद्दत ने कहा है कि यास्कीय निघण्टु और निरुक्त का मूल ब्राह्मण ही है। [25]

उपनिषद् का प्रतिपाद्य विषय ब्रह्मविद्या है अतः अर्थ की दृष्टि से उसके निर्वचन दार्शनिक तथा आध्यात्मिक हैं। जैसे – *छान्दोग्योपनिषद्* में ब्रह्म को सत्य कहकर सत्य की निरुक्ति निम्न प्रकार से दी है – *तानि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि सतीयमिति यद्ययत्सत्ततदमृतमय यात्ति तन्मार्यमथ यद्यं तेनोमे यच्छति तस्माद्यमहर्हर्वा एवं वित्स्वर्गलोकमेति*। [26]यहाँ सत्य शब्द का निर्वचन सत्+ती+यम् से किया गया है। सत् यह शब्द अमृत अर्थात् ब्रह्म का द्योतक है, ती जगत् का द्योतक है, जो यम् है वह इन दोनों अर्थात् ब्रह्म और जगत् को मिलाने वाला है। शैली की दृष्टि से निर्वचन में तस्मात् यत्, तत्, वै, हि, आदि शब्दों का, तथा निर्वचनीय पद के साथ त्व प्रत्यय का प्रयोग औपनिषदिक निर्वचनों की सामान्य प्रवृत्ति है। [27]

पुराण भी कभी कभी किसी विषय अथवा शब्द के स्पष्टीकरण के लिए निर्वचन का आश्रय लेते हैं। जैसे पुराण शब्द का ही निर्वचन – *पुरा अनति* [28] अर्थात् प्राचीन काल में जो जीवित था। *ब्रह्मवैवर्त पुराण* की यह संज्ञा क्यों है? यह निर्वचन द्वारा ही बताया गया है – *विवृतं ब्रह्म कात्स्र्येन कृष्णेन यत्र शौनकः। ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः।।*[29] पुराणों में भगवान् के नामों का निर्वचन अनेक स्थलों पर किया गया है।

यास्क और निर्वचन

वैदिक वाङ्मय में निर्वचन की क्रमशः विकसित हो रही शैली यास्क के निरुक्त में सर्वाङ्पूर्ण विज्ञान के रूप में स्थापित हो गयी है। लक्ष्मण सरूप ने कहा है कि पूर्व और पश्चिम दोनों को दृष्टि में रखकर विचार करें तो यास्क निर्वचन विद्या का प्रथम लेखक प्रतीत होता है तथा इसे एक पृथक् विज्ञान का रूप देने वाला भी वह प्रथम है।[30] यद्यपि यास्क का ग्रन्थ ही इस तथ्य का प्रमाण है कि यास्कपूर्व अनेक नैरुक्त आचार्य थे और उनके अपने निरुक्त ग्रन्थ भी अवश्य रहे

[22] शतपथ, १.१.१.१६
[23] ऐतरेय ब्राह्मण, १.२
[24] वही, २२.२
[25] भगवद्दत्त, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, पृ.१२१
[26] उपनिषदों में निर्वचन,पृ. ९०
[27] उपनिषदों में निर्वचन
[28] वायु पुराण, १.४८
[29] ब्रह्मवैवर्त पुराण, १.५५
[30] लक्ष्मणसरूप, अनु. सत्यभूषणयोगी, पृ.७७

होंगे किन्तु समस्त पूर्ववर्ती आचार्यों के निर्वचन विषयक सिद्धान्तों और शैलियों के समीक्षण,परीक्षण तथा समाहरण के द्वारा यास्क का ग्रन्थ निर्वचनशास्त्र का मानक बन गया और आज निरुक्त नामक वेदाङ्ग के प्रतिनिधि करने वाला यह एक मात्र ग्रन्थ है। यास्क का निरुक्त उनके द्वारा संकलित कठिन वैदिक शब्दों के कोष 'निघण्टु' (जो वैदिक शब्दों के कोष के लिए प्रयुक्त रूढि शब्द था) पर उनकी व्याख्या है।

नैरुक्त होने के कारण यास्क का यह आधारभूत सिद्धान्त है कि प्रत्येक नाम पद आख्यातज होता है – *तत्र नामान्याख्यातजातानि इति शाकटायनः नैरुक्तसमयश्च*[31]। क्रिया धातु से वाच्य होती है अतः प्रत्येक शब्द की किसी न किसी धातु से व्युत्पत्ति अवश्य ही की जा सकती है – *सर्वं प्रादेशिकम्*[32]। नैरुक्तों का यह समय उन्हें प्रत्येक शब्द के मूल में धातु के अन्वेषण की पूरी स्वतन्त्रता देता है। इसलिए यास्क कहते है कि नैरुक्त को हर शब्द का निर्वचन करना ही चाहिए – *न त्वेवं न निर्ब्रूयात्*[33]

नैरुक्त शब्द का निर्वचन व्याकरण की प्रक्रिया को ध्यान में रखकर नही करता अपितु अर्थ को ध्यान में रखकर करता है। शब्द के अर्थ में युक्त प्रधान क्रिया के सबसे निकट जो धातु होगी उसी से निर्वचन किया जायेगा भले ही वह व्याकरणिक संस्कारों के विपरीत हो– *न संस्कारमाद्रियेत्, विशयवत्यो हि वृत्तयो भवन्ति। यथार्थं विभक्तीः सन्नमयेत्*।[34] यथा होता का निर्वचन √हु दानादयोः से न करकर ह्वे√ज् आह्वाने से किया जायेगा क्योंकि वह होता की देवाह्वान रूप प्रधान क्रिया को बताता है। इसी प्रकार हनन क्रिया की प्रधानता से हस्त का निर्वचन √हन् से होगा जबकि वैयाकरण अर्थ की चिन्ता किये बिना उसे √हस् से सिद्ध कर देगा।

यास्क या नैरुक्तों लिये वैयाकरणों द्वारा 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' आदि द्वारा अव्युत्पन्न मानकर यथारूप स्वीकार कर लिये गये शब्द भी निर्वचनीय होते हैं। वह उनमें भी प्रकृतिप्रत्यय का उहन कर लेता है । निरुक्त शास्त्र के बिना व्याकरण अधूरा ही है – *तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्न्यम्*[35] व्याकरण की इसी न्यूनता को भरने के लिये उणादि सूत्रों की रचना की गयी। वस्तुतः उणादि सूत्रों में अव्युत्पन्न शब्दों की धातु खोजने का प्रयास नैरुक्तों का प्रभाव है।

यास्क के निर्वचनसिद्धान्त

यास्क द्वारा निर्धारित निर्वचन के प्रमुख सिद्धान्तों की चर्चा सङ्क्षेप में यहाँ की जा रही है –

क) शब्द तीन प्रकार के होते हैं – *त्रिविधा हि शब्दव्यवस्था प्रत्यक्षवृत्तयः परोक्षवृत्तयोऽतिपरोक्षवृत्तयश्च तत्रोत्कटक्रियाः प्रत्यक्षवृत्तयः। अन्तर्लीनक्रियाः परोक्षवृत्तयः। अतिपरोक्षवृत्तिषु शब्देष्वेव निर्वचनाभ्युपायः तस्मात् परोक्षवृत्तितामापद्य प्रत्यक्षवृत्तिना शब्देन निर्वक्तव्याः*।[36] निर्वचन का विषय मुख्यतः अतिपरोक्षवृत्ति वाले शब्द हैं । तथापि तीनों प्रकार के शब्दों को ध्यान में रखकर यास्क ने तीन सिद्धान्त दिये हैं–

१. **प्रत्यक्षवृत्ति** – इनके विषय में यास्क का कहना है कि जिन शब्दों में उदात्त आदि स्वर तथा लोपादि व्याकरण की प्रक्रिया उन शब्दों के अनुकूल हो तथा अर्थ की वाचक धातु मूल रूप में अथवा कुछ विकृतरूप में दिखायी दे रही हो उन शब्दों का निर्वचन प्रत्यक्ष दिखायी दे रही प्रकृति एवं प्रत्यय

[31] निरुक्त, १.४
[32] निरुक्त, १.४
[33] निरुक्त, २.१
[34] निरुक्त, २.१
[35] निरुक्त, १.५
[36] निरुक्त १.१ पर दुर्ग

के आधार पर कर देना चाहिए – *तद्येषु पदेषु स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेनान्वितौ स्याताम्, तथा तानि निर्ब्रूयात्।*[37] ऐसे शब्दों का व्याख्यान व्याकरण से हो जाता है। जैसे – कुम्भकार आदि शब्द।

२. **परोक्षवृत्ति** – जिन पदों का अर्थ व्याकरण की प्रक्रिया के अनुकूल न हो तथा धातु का विकार भी दृष्टिगत न हो उनका निर्वचन शब्द के प्रसङ्ग प्राप्त अर्थ को ध्यान में रखकर निर्वचन के फलस्वरूप प्राप्त अर्थ में शब्द के वर्तमान अर्थ के साथ उपलब्ध समान प्रवृत्ति के आधार पर करना चाहिए – *अथानन्वितेऽर्थेऽप्रादेशिके विकारेऽर्थनित्यः परीक्षेत् केनचिद्वृत्तिसामान्येन*[38] जैसे थनवाची ऊधस् शब्द के साथ रात्रि के स्नेहन (ओस की बूंदों द्वारा) की समान प्रवृत्ति के कारण रात्रिवाचक ऊधस् का निर्वचन √उन्द क्लेदन धातु से किया गया है। इसी प्रकार पर्व शब्द का निर्वचन द्रष्टव्य है।

३. **अतिपरोक्षवृत्ति** – जिन शब्दों में वृत्ति बिल्कुल ही अस्पष्ट हो। इन शब्दों का निर्वचन इनसे मिलते जुलते तथा उनमें विद्यमान अक्षरों अथवा वर्णों से युक्त किसी अन्य शब्द से करना चाहिए – *अविद्यमाने सामान्येऽप्यक्षरवर्णसामान्येन निर्ब्रूयात्।*[39] जैसे जठर शब्द का निर्वचन –– *जठरमुदरं भवति। जग्धमस्मिन् ध्रियते धीयते वा।*[40] अर्थात् जठर उदरवाची है क्योंकि इसमें खाया हुआ अन्न रखा जाता है इसलिए जठर कहते हैं।

ये तीनों प्रकार के निर्वचन भी तभी सम्भव है जबकि निर्वचनकार ध्वनि परिवर्तन अथवा ध्वनिविकार के सिद्धान्त जानता हो। इसलिए यास्क ने ये तीन सिद्धान्त बताने के ठीक बाद वर्णलोप, आगम, विपर्यय आदि संभावित ध्वनिविकारों के निदर्शन प्रस्तुत किये हैं। निरुक्त के विषय में प्रचलित भी है –

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धास्तोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्।।[41]

यास्क ने जो उदाहरण दिये हैं[42] उनमें से कुछ का सङ्केत मात्र यहाँ किया जा रहा है –

लोप	–	प्रत्तम्, स्तः, गत्वा
वर्णविपर्यय	–	कसिता< सिकता
वर्णविकार	–	मेह<मेघ, राजन्<राजा
आगम	–	वार < द्वार

ख) उपर्युक्त नियम अकेले पदों के निर्वचन के लिए है। यास्क ने समासान्त तथा तद्धितान्त शब्दों के निर्वचन के लिए पुनः सिद्धान्त बनाये हैं – *अथ तद्धितसमासेष्वकपर्वसु चानेकपर्वसु च पूर्वम्पूर्वमपरं प्रविभज्य निर्ब्रूयात्*[43] अर्थात् एक पद वाले अथवा अनेक पद वाले तद्धित और समास में पहले पहले अंश का निर्वचन करे फिर बाद वाले का।[44]

[37] निरुक्त,२.१
[38] निरुक्त, २.१
[39] निरुक्त, २.१
[40] निरुक्त, ४.१
[41] काशिका, ६.३.१०९
[42] निरुक्त, २.१
[43] निरुक्त, २.१
[44] दे० निरुक्त २.१ पर दुर्ग

जैसे तद्धितान्त – दण्ड्यः (पुरुषः) का निर्वचन यास्क करते हैं – *दण्डमर्हतीति वा दण्डेन सम्पद्यते इति वा।*[45] यहाँ पहले यत् प्रत्यय के अर्हता और सम्पादन दो अर्थ बताते हैं। उसके बाद दण्ड का धारणार्थक √दद् धातु से निर्वचन करते हैं – *दण्डो ददतेर्धारयतिकर्मणः अक्रूरो ददते मणिम्।*[46] इस निर्वचन से ज्ञात होता है कि यास्क के काल में धारण करना अर्थ में √दद् धातु होती थी।

समासान्त का निर्वचन – राजपुरुषः में राजन् और पुरुष दोनों का निर्वचन अलग अलग किया है। पहले राजन् का √राज् धातु से निर्वचन बताकर फिर पुरुष का पुर + √सद्, पुर+शी, तथा पुरि से निर्वचन किया है।[47]

ग) निर्वचन के लिए नैरुक्त को भाषा के क्षेत्रीय प्रभेदों, लोक में प्रयोग की प्रवृत्ति तथा उसके विकास का भी ज्ञान होना चाहिए तभी शब्द का मूल खोजा जा सकता है। जैसा यास्क ने बताया है कि कभी कभी किसी शब्द का आख्यातरूप किसी भाग में तथा नामरूप किसी भाग में बोला जाता है। जैसे लवनार्थक दा धातु का आख्यात पद दातिः प्राच्यों में तथा नामरूप दात्र उदीच्यो में प्रचलित है। भाषा के विकास की दृष्टि से देखें तो वेद में प्राप्त कृदन्त शब्द दमूनस की मूल √दम् धातु का तिङन्त रूप वेद में न मिलकर लौकिक भाषा में ही मिलता है यदि नैरुक्त को भाषा का इतिहास से परिचित नहीं होगा तो ऐसे शब्दों का निर्वचन नहीं कर सकेगा।[48]

घ) अनेकार्थक शब्दों के निर्वचन के सम्बन्ध में एक अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त यास्क ने दिया है – *एवमन्येषामपि सत्त्वानां सन्देहाः विद्यन्ते, तानि चेत्समानकर्माणि समाननिर्वचनानि, नाना कर्माणि चेन्नानानिर्वचनानि। यथार्थं निर्वक्तव्यानि।* [49]

जब एक शब्द के अनेक अर्थ हो और उन सबका मूल एक ही क्रिया हो तो सबका निर्वचन समान ही होगा। जैसे गो शब्द के पृथ्वी, गाय, बाण आदि अनेक वाच्यार्थों में गमन क्रिया की समानता के कारण इन सबका निर्वचन √गम् धातु से ही किया जा सकता है। किन्तु कभी एक ही शब्द के भिन्न भिन्न अर्थों की मूलभूत क्रिया भिन्न होती है। वस्तुतः अनेक बार पृथक् धातुओं से निष्पन्न नामपद एक ही रूप ले लेते है।[50] जैसे कृ करणे तथा कृती छेदने दोनो धातुओं से क्विप् करने पर कृत् शब्द ही बनता है। इसलिए हमें वे एक जैसे प्रतीत अवश्य होते हैं किन्तु उनका मूल भिन्न होता है। इसलिए यदि शब्द के भिन्न भिन्न अर्थों में भिन्न भिन्न क्रियाओं का योग हो तो नैरुक्त को उनका निर्वचन भी तदर्थवाची भिन्न धातु से करना चाहिए। जैसे – निऋति शब्द के पृथ्वी तथा दुर्गति दो अर्थ हैं। यहाँ पृथ्वी अर्थ में नि + √रम् से निर्वचन करना होगा। क्योंकि प्राणी यहाँ आनन्दभोग करते हैं इसलिए यह निऋति है – निरमणात्। दुर्गति का निर्वचन भिन्न धातु से होगा – ऋच्छतेः कृच्छ्रापत्तिः। यहाँ निर् + √ऋच्छ से व्युत्पत्ति होगी।[51]

ङ) यास्क का अन्तिम और सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है – *नैकपदानि निर्ब्रूयात्।*[52] नैरुक्त उन शब्दों का निर्वचन न करें जिनके सन्दर्भ अज्ञात हैं। नैरुक्त निर्वचन का आधार अर्थ को मानते हैं। एक ही शब्द भिन्न भिन्न

[45] निरुक्त, २.१
[46] वही
[47] निरुक्त, २.१
[48] निरुक्त, २.१
[49] निरुक्त, २.२
[50] लक्ष्मण सरूप, अनु. सत्यभूषण योगी, पृ.७९
[51] निरुक्त, २.२
[52] निरुक्त, २.१

प्रसङ्गों में भिन्न अर्थों में आ सकता है। यदि सन्दर्भ का ज्ञान न हो तो शब्द का सही निर्वचन नहीं हो सकेगा। जैसे – जहा । सन्दर्भ के अभाव में यह नहीं निश्चय किया जा सकता है कि इसका निर्वचन √हन् अथवा √हा में से किस धातु से हो। जैसे – *को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत। जहा को अस्मदीषते*[53] *इस प्रस्तुत संदर्भ में जघान यह अर्थ निश्चित किया जा सकता है।* [54]

यास्क की निर्वचन शैली के अभिलक्षण

यहाँ कुछ बिन्दुओं में यास्क के निर्वचनों में प्रदर्शित शैली के प्रमुख अभिलक्षणों की चर्चा की जा रही है –

१. शब्द का निर्वचन करने से पूर्व यास्क प्रायः पञ्चम्यन्त हेतुवाचक 'कस्मात्' शब्द का प्रयोग करके यह प्रश्न उपस्थापित करते है कि शब्द का वह नाम किस क्रियावाचक धातु से है ? इसके अनन्तर यह बताते है कि वह शब्द किस धातु से बना है। पुनः उस धातु से ही क्यों निर्वचन किया गया इसका कारण बताते है। यथा – *हिरण्यं कस्मात् ? ह्रियते आयम्यमानमिति वा तथा हस्तो हन्तेः प्रांशुर्हनने।*[55]

२. यास्क जिस शब्द को निर्वचन के लिए स्वीकार करते हैं प्रथमतः उसके अर्थ का निर्धारण करते हैं फिर वैदिक वाङ्मय से ऐसे मन्त्र का उद्धरण देते हैं जिसमें वह शब्द यास्क द्वारा निर्धारित अर्थ में आया है। जैसे गो शब्द का आदित्य अर्थ निश्चय करने के बाद वेद का मन्त्र उद्धृत किया है जिसमें गो का अर्थ आदित्य है[56] – *आदित्यो गौरुच्यते* । *उतादः पुरुषे गवि* [57]

३. कभी एक ही शब्द के अनेक वैल्कल्पिक निर्वचन प्रस्तुत करते हैं। जैसे आदित्य, अग्नि, इन्द्र, जातवेदस, निघण्टु आदि के निर्वचन। आदित्य का निर्वचन देखें – *आदित्यः कस्मात् ? आदत्ते रसान्, आदत्ते भासं ज्योतिषाम्, आदीप्तो भासेति वा, अदितेः पुत्रः इति वा।*[58] शब्द के अर्थ का लोक में जिन जिन क्रियाओं से योग प्रसिद्ध है उन सबकी वाचक धातु से एक शब्द का निर्वचन कर देते हैं।

४. यास्क के निर्वचन कभी शब्द के भावानुवाद से प्रतीत होते हैं निर्वचन जैसे नहीं।[59] जैसे – अमा का निर्वचन – *अमा पुनरनिर्मित भवति।* [60]

५. निर्वचनीय शब्द के अतिरिक्त उद्धृत मन्त्र में आये अन्य कठिन शब्दों का भी निर्वचन करते हैं। जैसे तितउ पद के निर्वचन करते समय उद्धृत मन्त्र *सक्तुमिव तितउना*[61] में आये धीर, भद्र तथा लक्ष्मी शब्दों का निर्वचन। [62]

६. शब्द के वाच्यार्थ के साथ ही उसके लक्ष्यार्थ को बताकर लक्ष्यार्थ वाचक शब्द का भी निर्वचन करते हैं। जैसे पशुवाचक गो शब्द के दुग्ध, गोचर्म, गोचर्म से बनी रस्सी आदि लक्ष्यार्थ बताकर उन अर्थों में वैदिक प्रयोगों का उद्धरण देने के साथ साथ तदर्थवाची शब्दों का निर्चवन भी करते हैं।[63] जैसे – *अंशु*

[53] ऋग्वेद ८.४५.३७
[54] निरुक्त, ४.१
[55] निरुक्त, २.३
[56] निरुक्त, २.१
[57] ऋग्वेद ६.५६.३
[58] निरुक्त, २.४
[59] Varma, The Etymology of Yask, p.31
[60] निरुक्त, ५.१
[61] ऋग्वेद १०.७२
[62] निरुक्त , ४.२
[63] निरुक्त, २.२

दुहन्तोऽध्यासते गवि[64] *इत्यधिषवणचर्मणः। अंशुः शमष्टमात्रः भवति, अनन्नाय शं भवतीति वा। चर्म चरतेर्वा, उच्चृतं भवतीति वा।* [65]

७. निर्वचनीय पद के साथ साथ प्रसङ्ग प्राप्त शब्दों तथा पर्यायों का निर्वचन भी करते हैं। जैसे – कम्बोज शब्द का निर्वचन करते समय कम्बल शब्द का निर्वचन। [66] *कम्बोजाः कम्बलभोजाः , कमनीयभोजाः वा। कम्बलः कमनीयं भवति*। गो का लक्ष्य पयस् बताकर पयस् के साथ साथ तत्पर्यायवाची क्षीर का निर्चवन भी किया है। [67]

८. इति विज्ञायते अथवा इति ह विज्ञायते कहकर ब्राह्मण के निर्वचनों को अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है। *जैसे यदवृणोत् तद् वृत्रत्वम् इति विज्ञायते।* [68]

९. कुछ स्थलों पर यास्क अपने निर्वचन की पुष्टि में आख्यान या ऐतिहासिक घटना का उल्लेख और उसकी व्याख्या भी करते हैं। जैसे वृत्राख्यान। यास्क वृत्र का अर्थ मेघ करते हैं। वेद में इन्द्र और वृत्र के युद्ध की कथा आती है कि इन्द्र ने वृत्र का वध किया जिससे कारण अवरुद्ध जल बह निकला। यास्क के अनुसार यह युद्ध का वर्णन उपमार्थ है और इन्द्र अन्तरिक्ष स्थानीय वह शक्ति है जो मेघ रूप जल राशि को पृथ्वी पर प्रवाहित करता है।

१०. किसी शब्द के निर्वचन या अर्थ में मतभेद होने पर नैरुक्तों के निर्वचन के साथ उस काल के अन्य सम्प्रदाय जैसे परिव्राजक, ऐतिहासिकों आदि के भी मत को प्रस्तुत करते हैं। जैसे – ऋग्वेद ११.६४.३२ में निऋति का अर्थ परिव्राजक कष्ट करते है जबकि नैरुक्त पृथ्वी। ऐसा सङ्केत यास्क ने किया है।[69] ऐसे ही वृत्र के निर्वचन में बताते है कि नैरुक्त वृत्र का अर्थ मेघ करते है जबकि ऐतिहासिक वृत्र से त्वष्टा के पुत्र किसी असुर को मानते हैं– *तत्को वृत्र? मेघ इति नैरुक्ताः। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः*। [70]

निर्वचन की तकनीक और शास्त्र

देवताशास्त्र के अवगमन हेतु जिस निरुक्त शास्त्र का प्रवर्तन हुआ वह आगे जाकर सर्वशास्त्रोकारक बन गया। शास्त्रों के सिद्धान्तों तथा पारिभाषिक शब्दावली के अवबोधनार्थ निर्वचन एक उपकरण की तरह कार्य करता है। शास्त्रकार तथा प्रायः टीकाकार अपने उद्देश्य शास्त्र में अध्येता के प्रवेशनार्थ प्रमुख पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण निर्वचनों के माध्यम से ही करते है। यहाँ कुछ दृष्टान्त द्रष्टव्य हैं –

अभिनव गुप्त ने परात्रिंशिका की विवृति में अनुत्तर पद के १६ निर्वचन किये हैं जिनमें से कुछ उदाहरण हैं – *न विद्यते उत्तरम् अधिकं यतः, न विद्यते उत्तरं प्रश्नप्रतिवचिरूपं यत्र, न विद्यते उत्तरः उत्तरणं यत्र, न विद्यते उत्तरः ऊर्ध्वतरणक्रमः यतः आदि*।[71] अभिनवगुप्त लोचन टीका[72] में ध्वनि के ५ निर्वचन करते हैं – *ध्वनति यः स व्यञ्जकः शब्दः ध्वनिः, ध्वनति यः स व्यञ्जकोऽर्थो ध्वनिः, ध्वन्यते इति ध्वनिः, ध्वननमिति ध्वनिः, ध्वन्यतेऽस्मिन् ध्वनिः*। व्याकरणशास्त्र के

[64] ऋग्वेद १०.९४.९
[65] निरुक्त, २.२
[66] निरुक्त, २.१
[67] निरुक्त, २.२
[68] निरुक्त, २.६
[69] निरुक्त, २.२
[70] निरुक्त, २.५
[71] परात्रिंशिका विवृति, १
[72] लोचन, तृतीयोन्मेष

प्राणभूत प्रत्याहर का निर्वचन *'न्यास'* में किया गया है – *प्रत्याहिन्ते = संक्षिप्यन्ते वर्णा अस्मिन्।*[73] विश्वनाथ का काव्य लक्षण है – *'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'।*[74] रस शब्द का निर्वचन वे करते हैं – *रस्यते इति रसः*[75] इस निर्वचन से न केवल रस अपितु रसाभास, भाव, भावाभास आदि का अन्तर्भाव हो जाता है और यही विश्वनाथ को अभीष्ट है। इस प्रकार अन्यान्य शास्त्रों में भी इस प्रकार के अनेक निर्वचन मिल जाते हैं जिनका सङ्केत मात्र यहाँ किया गया है।

उपसंहार

आधुनिक भाषाशास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर यास्क के निर्वचन का विश्लेषण करने पर भी यह सिद्ध होता है कि वे ध्वनिपरिवर्तन के अपश्रुति, अपिनिहित, लोप, आगम, सम्प्रसारण आदि सामान्य व विशेष ध्वनि नियमों को जानते हैं या ऐसा कहें कि आधुनिक भाषाविज्ञान को यह ध्वनिनियम यास्क की ही देन हैं। उनकी निर्वचन की प्रविधि भी वैज्ञानिक है। *Linguistic Contamination* जैसे भाषाविज्ञान के नवीन प्रयोगों की झलक भी यास्क के निर्वचन में देखी जा सकती है।[76]

यास्क अपने समय में भाषा के देशकालकृत प्रभेदों से परिचित थी। यास्क के निर्वचन प्रमाण है कि उस काल तक संस्कृत बोलचाल की भाषा थी तथा वैदिक तथा लौकिक भाषा में पर्याप्त अन्तर आ चुका था, साथ ही प्राकृत जैसी भाषिक प्रवृत्तियाँ भी क्रियाशील थी। उनके द्वारा प्रदत्त दुहिता, देवर, कीकट, अपत्य, कच्छ जैसे शब्दों के निर्वचन तत्कालीन सामजिक, धार्मिक स्थिति व मान्यताओं पर प्रकाश डालते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Bhattacharya, Bishnupada. *Yaska's Nirukta and the Science of Etymology*. K. L. Mukhopadhyay, 1958.
2. Eggeling, Julius, translator. *Sacred Books of the East*. Vol. 12, Clarendon Press, 1882.
3. Griffith, Ralph T. H., translator. *The Rigveda: The Hymns of the Rigveda*. 2 vols., E. J. Lazarus and Co., 1896.
4. Griffith, Ralph T. H., translator. *The Hymns of the Atharvaveda*. E. J. Lazarus and Co., 1895–1896.
5. Sarup, Lakshman. *The Nighantu and the Nirukta*. Motilal Banarsidass, 1967.
6. Singh, Fateh. *The Vedic Etymology*. The Sanskrit Sadan, 1952.
7. Varma, Siddheshwar. *The Etymology of Yaska*. Vishveshwaranand Institute Publication, 1953.
8. उपाध्याय, बलदेव. *पुराण विमर्श*. चौखम्बा विद्याभवन, 1965।
9. खण्डेलवाल, जयकिशन. *साहित्यदर्पण*. विनोद पुस्तक मन्दिर, 1975।
10. गुरुटू, नीलकण्ठ. *श्री परात्रिंशिका*. मोतीलाल बनारसी दास, 1985।

[73] अ,इ,उ,ण् पर न्यास

[74] साहित्यदर्पण, १

[75] वही

[76] Varma, The Etymology of Yask, pg.7

11. त्रिपाठी, रामसागरः. *ध्वन्यालोकः*. मोतीलाल बनारसी दास, 1963।
12. भगवद्दत्त. *वैदिक वाङ्मय का इतिहास*. भाग 2, प्रणव प्रकाशन, 1976।
13. मल्होत्रा, वीणा. *उपनिषदों में निर्वचन*. संजय प्रकाशन, 2000।
14. मालवीय, सुधाकर. *ऐतरेयब्राह्मण*. तारा प्रिंटिंग वर्क्स, 1980।
15. विद्यावारिधिः, विजयपालः, संपादक. *काशिका*. रामलाल कपूर ट्रस्ट, 2013।
16. शर्मा, श्रीराम. *ब्रह्मवैवर्तपुराण*. संस्कृति संस्थान, 1970।
17. शास्त्री, कपिलदेव. *हिन्दी निरुक्त*. साहित्य भण्डार, 2009।
18. शास्त्री, छज्जूराम. *निरुक्त पञ्चाध्यायी*. मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स्, 2012।
19. शास्त्री, द्वारिकाप्रसादः, और कालिकाप्रसादशुक्लः. *काशिकावृत्तिः*. सुधी प्रकाशन, 1983।
20. शास्त्री, रूपकिशोर. *सांहितेय निरुक्तिकोषः*. गुरुकुल वृन्दावन स्नातक शोध संस्थानम्, 2005।
21. शास्त्री, शिवनारायण. *निरुक्त के पाँच अध्याय*. इंडोलॉजिकल बुक हाउस, 1972।
22. शास्त्री, शिवनारायण. *निरुक्त मीमांसा*. इंडोलॉजिकल बुक हाउस, विक्रम संवत् 2026।
23. शास्त्री, शिवनारायण. *वैदिक वाङ्मय में भाषा चिन्तन*. इंडोलॉजिकल बुक हाउस, विक्रम संवत् 2028।
24. श्रीमहेशचन्द्रन्यायरत्न. *मीमांसादर्शनम्*. बिसप कॉलेज, विक्रम संवत् 1925।
25. सरस्वती, सम्पूर्णानन्द. *शतपथ ब्राह्मण*. दयानन्द संस्थान, 1973।
26. सरूप, लक्ष्मण, अनुवादक; योगी, सत्यभूषण. *निघण्टु तथा निरुक्त*. मोतीलाल बनारसीदास, 1967।